

आतस दुनीआ खुनक नामु खुदाइआ ॥ कलि ताती ठांढा हरि नाउ ॥

भाग - 3

सारी दुनिया को 'मानसिक आग' तो लगी हुई है, परन्तु जब उत्तम एवं नेक भावनाओं से बनी हुई संस्थाओं, जैसे —

स्कूल

कालिज

यूनिवर्सिटी

मिशनरी कालिज

लाइब्रेरी

अनाथ आश्रम

विधवा आश्रम

हस्पताल

गोशाला

आदि अनेक प्रकार की धर्मार्थ संस्थाओं (Charitable institutions) में भी इस मानसिक अग्नि का 'ताप लगता है', तब बड़ा अफसोस और दुख होता है ।

इन नेक धर्मार्थ संस्थाओं में भी हमने अपनी आन्तरिक 'मानसिक अग्नि' लगा दी है — जिसके धुएँ का प्रकटाव कभी-कभी अरबबारों में प्रकाशित होता रहता है।

वास्तव में —

धार्मिक स्थान

धर्मशाला

छे
मठ
दरगाह
ठाठ
आदि, श्रेष्ठ एवं पवित्र संस्थाएँ —

पवित्रता

प्रेम स्वैपना

मैत्री भाव

सेवा भाव

शान्ति

मानसिक ठंडक

आत्मिक जीवन-दिशा

हरि कीर्तन

भक्ति

नाम अभ्यास

तथा दैवीय गुणों के केन्द्र होने चाहिए ।

परन्तु, बहुत निराशा तथा दुख की बात है कि ऐसे पवित्र आत्मिक केन्द्रों में भी, हमने अपनी आन्तरिक मानसिक अग्नि लगा दी है, तथा वहाँ भी —

ईर्ष्या

द्वेष

तअस्सुख

नफरत

लोभ

क्रोध

अहंकार

ॐ

सह्यम

अशांति

विमुरवता

की प्रधानता तथा प्रचलन हो रहा है। इसका प्रकटाव प्रत्यक्ष रूप में नित्यप्रति देखने तथा सुनने में आ रहा है।

हमने अपनी अज्ञानता में —

तुच्छ रचियों

तुच्छ विचारों

गुह्यबन्दी

ईर्ष्या-द्वेष

वैर-विरोध

स्वार्थ

‘कुर्सी’ की लालसा

नम्बरदारी

अहम् का प्रकटाव

करते हुए ‘धर्म-स्थानों’ को भी —

ईर्ष्या-द्वेष का अड्डा

अहम् का अरवाड़ा

क्रोध का क्षेत्र

स्वार्थ का माध्यम

मायिकी लाभ

गप-शप का अरवाड़ा

निंदा-चुगली का केन्द्र

पाटी-बाजी का अड्डा

तनाव का क्षेत्र
बदला लेने का केन्द्र

बना दिया है।

दुखदायी बात तो यह है कि जिस 'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी' को हम इष्ट तथा गुरु मानते हैं — उसकी पावन उपस्थिति में, धर्म के नाम पर, गुरबाणी के आशय के ठीक विपरीत —

ईर्ष्या

द्वेष

निंदा

नफरत

कै

विरोध

स्वार्थ

लोभ

क्रोध

अहम्

का खुल्लम-खुल्ला प्रकटाव करते हैं तथा 'गुरु ग्रन्थ साहिब' का निरादर करके अपने धर्म का ग्लानि-पूर्ण इशतहार (poster) स्वयं ही प्रस्तुत करते हैं ।

हम मानसिक ग्लानि या अग्नि की 'चिंगारी' अपने साथ धर्म-स्थानों में भी ले जाते हैं तथा एक-दूसरे को 'चिंगारी' लगा कर भड़काते हैं।

इसके परिणाम स्वरूप गुरुद्वारों तथा पवित्र धार्मिक-स्थानों में भी —

लोभ-लहर

तू तू, मैं-मैं

अहम् की डींगें हाँकना

गुट्टबन्दी
रवीचतान
तानाकशी
निंदा
चुगली
नफरत
कैर
विरोध
इगड़े
लड़ाईयाँ
रकून खराबा

आदि, घृणा योग्य, भयानक तथा दुखदायी कारनामे होते रहते हैं!!

इस प्रकार हम अपनी आन्तरिक मानसिक गुप्त अग्नि द्वारा —

अपने इष्ट 'श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी' का निरादर करते हैं।

गुरबाणी की कदर, कीमत तथा सम्मान कम करते हैं।

गुरबाणी के आशय से दूर जाते हैं।

गुरसिक्खी से वि-मुख होते हैं।

आत्मिक पाप कमाते हैं।

मन मैला करते हैं।

मानसिक अग्नि में और तेल डालते हैं।

मानसिक अग्नि-कुंड की लपटों में जलते हैं।

अपना जीवन तबाह करते हैं।

नरक के भागीदार बनते हैं।

अभिलाषी जिज्ञासुओं को निर-उत्साह करते हैं।

गुरसिक्खी का निकृष्ट उदाहरण पेश करते हैं।

धर्म का मजाक उड़ाते हैं।

ग्लानि वाले तुच्छ उदाहरणों से नास्तिकता का प्रचार करते हैं।
पवित्र धर्म को 'कलंक' लगाते हैं।

विश्व के समस्त वायुमंडल के 'अग्नि कुण्ड' में बढ़ोतरी करते हैं।

धर्म स्थानों की ऐसी दशा देख कर, अभिलाषी जिज्ञासुओं को निराशा होती है। जिज्ञासुओं की इस निराशा भरी 'आह' का भाई साहिब भाई गुरदास जी ने यूँ वर्णन किया है —

बाहरि की अग्नि बूझत जल सरिता कै
नाउ मै जउ आग लागै कैसे कै बुझाईए ।

बाहरि सै भागि ओट लीजीअत कोट गड़
गड़ मै जउ लूटि लीजै कहो कत जाईए ।

चोरन कै त्रास जाइ सरनि नरिद गहै
मारै महीपति जीउ कैसे कै बचाइए ।

माइआ डर डरपत हारि गुरदुआरे जावै

तहां जउ बिआपै माइआ कहां ठहराईए । (क. भा. गु. 544)

इस गुप्त, भयानक तथा घातक अग्नि को और स्पष्ट रूप में समझने के लिए लकड़ी का उदाहरण उपयुक्त होगा —

लकड़ी के अन्दर गुप्त अग्नि छिपी हुई है।

इस गुप्त अग्नि को प्रकट करने के लिए — छोटी सी चिंगारी की आवश्यकता है, जिस से लकड़ी जल कर ज्वाला का रूप धारण कर लेती है। इस ज्वाला में से निकली हुई चिंगारियाँ उड़कर और अन्य लकड़ियों या घरों को भी आग लगा देती हैं तथा बेअंत तबाही मचा देती हैं।

'जीव' चाहे ऊपर से प्रकट रूप में चाहे कितना ही —

भद्र

सयाना

विद्वान
ज्ञानी
चतुर
वैज्ञानिक
फिलोस्फर
अफलातून
वी. आई. पी. (V.I.P.)
खानदानी
शाही
नेक
पवित्र
परोपकारी
योगी
जंगम
साधू
संत
महात्मा
जगद्गुरु
आचार्य
श्री 108
योद्धा
सुन्दर
मोहक
मायाधारी
छत्रपति
राजा

आदि, हो। परन्तु सभी के भीतर ये पाँचों 'तत्-अग्नियाँ— 'भूत-

प्रेत' की भाँति, अदृष्ट गुप्त रूप में —

धँस

बस

सस

चिपक

समा

रही हैं, तथा ओत-प्रोत, ताने-बाने में रवि रही परिपूर्ण हैं!!

अंतरि पंच अगनि किउ धीरजु धीजै ॥

अंतरि चोरु किउ सादु लहीजै ॥ (पृ. 905)

काइआ आरणु मनु विचि लोहा पंच अगनि तितु लागि रही ॥

कोइले पाप पड़े तिसु ऊपरि

मनु जलिआ सन्ही चिंत भई ॥ (पृ. 990)

जीव के जीवन क्षेत्र के हर पक्ष —

गर्मी-सर्दी

दुख-सुख

हँसने-राने

हर्ष-शोक

लाभ-हानि

गरीबी-अमीरी

वृद्ध-बाल

स्त्री-पुरुष

नेकी-बदी

वैर-विरोध

ईर्ष्या-द्वेष

लोभ-लालच

काम-क्रोध
मोह-ममता
प्रीत-प्यार
नफरत
तृष्णा
मैं-मेरी
विचारों
मनोभावों
श्रद्धा
पाठ-पूजा
कर्म-धर्म
योग-साधना
द्वैत-भाव
त्याग
वैराग्य

आदि, की प्रवृत्ति में भी इस 'मानसिक अग्नि' के 'तत्' अपना-अपना

दम्क

अक्स

ताप

संगत

जलवा

दिखा जाते हैं।

गूझी भाहि जलै संसारा ॥

(पृ. 673)

चाहे अपनी 'मानसिक अग्नि' के ताप अथवा 'रंगत' को
हम—

ढक कर

छुपा कर

दबा कर

परतण्ड

द्वारा छुपाने की कितनी भी कोशिश करें या इसके अस्तित्व को —

जाने या न

महसूस करें या न

माने या ना

स्वीकार करें या न करें

या जान बूझ कर —

लापरवाह

बेपरवाह

अनजान

मस्त

हो जायें — फिर भी —

आँख की टेड़ी नजर से

नजर के व्यंग्य से

व्यंग्य के कटाक्ष से

माथे के बल से

फीके बोल से

ताने-व्यंग्य से

नुक्ताचीनी से

गाली ग्लोच से
निंदा से
नाक भौं चढ़ाने से
बे-इन्साफी से
धक्के शाही से
अत्याचार से
शिकवे शिकायतों से
घृणा से
एलर्जी (allergy) से

तथा अन्य अनेक प्रकार की 'उक्साइट' या बहानों द्वारा हमारी यह आन्तरिक अग्नि —

सुलगती है।

भभकती है।

प्रकट होती है।

जलती है ।

प्रचंड ज्वाला बनती है।

लपटें छोड़ती है।

इस प्रकार हमारा अन्दर-बाहर जला देती है तथा हमारे उत्तम धर्म-कर्म, नेकियाँ, परोपकार तथा दैवीय गुणों को भी जला कर राख कर देती है। यह आन्तरिक अग्नि शरीर को कमजोर तथा निडाल बना कर कई प्रकार की मानसिक तथा शारीरिक बीमारियों का कारण बनती हैं।

तितु सरवरडै भईले निवासा पाणी पावकु तिनहि कीआ ॥

पंकजु मोह पगु नही चालै हम देखा तह डूबीअले ॥

मन एकु न चेतसि मूड मना ॥

हरि बिसरत तेरे गुण गलिआ ॥

(पृ. 12)

कामु क्रोध काइआ कउ गालै ॥

जिउ कंचन सोहागा ढालै ॥ (पृ. 932)

अंतरि क्रोधु अहंकारु है

अनदिनु जलै सदा दुखु पाइ ॥ (पृ. 1415)

इन तुच्छ भावनाओं या रुचियों की तह में, उपलों की आग की भांति हमारी गुप्त अग्नि, हमारे अन्तःकरण में दबी हुई है तथा सुलगती रहती है।

गूझी भाहि जलै संसारा भगत न बिआपै माइआ ॥

(पृ. 673)

जब कभी हमारे मायिकी विचारों की किसी भावना (feelings) को 'चोट' लगती है या विरोध होता है तब हमारे मन का 'अहम्' 'उत्तेजित' हो उठता है तथा हमारे भीतर **गुप्त अग्नि सुलग पड़ती है।**

इस नुक्ते पर भक्त फरीद जी ने बहुत व्यंग्य से कटाक्ष किया है —

फरीदा दुनी वजाई वजदी तूं भी वजहि नालि ॥

सोई जीउ न वजदा जिसु अलहु करदा सार ॥ (पृ. 1383)

अर्थात् — 'हे मन', साधारण लोगों के मन की तारें 'बोल-कुबोल' से बजने लग जाती हैं। परन्तु, तूं 'भक्त' कहलवाता हुआ भी लोगों के बोल-कुबोल से क्यों बज पड़ता है!!!

इसके विपरीत गुरबाणी हमें यूँ उपदेश देती है —

एकु बोलु भी खवतो नाही साधसंगति सीतलई ॥

(पृ. 402)

ज्येष्ठ-आषाढ़ के महीने मे हम अत्यधिक गर्मी के कारण बेहाल होते हैं तथा पँखों, कूलरों (cooler) तथा बर्फ आदि द्वारा इस गर्मी की तपश से बचने के अनेक उपाय करते हैं ।

इसी प्रकार 'भीतरी मानसिक अग्नि' की अनेक लपटें —

चिंता

फिकर

तृष्णा

रोष

गिले

एलर्जी (allergy)

ईर्ष्या

द्वेष

नफरत

वै

विरोध

निंदा

चुगली

शक

उ

जल्म

कुढ़न

दुख

क्लेश

काम

क्रोध

लोभ

मोह

अहंकार

में-मेरी

आदि 'वाशनाएँ' जब हमें अत्यन्त तंग करती हैं तब हम इनके ताप से बचने के लिए— सिनेमा, टी. वी. (T.V.), नावल, नशे या ताश तथा कई प्रकार के अन्य मनोरंजनों द्वारा इन्हें अस्थायी रूप से भुलाने या टालने की कोशिश करते हैं। परन्तु हमारे मन, चित्त तथा अन्तःकरण में यह 'गुप्त-अग्नि' — उसी प्रकार सुलगती रहती है तथा बढ़ती जाती है —

'मर्ज बढ़ती गई ज्यों-ज्यों दवा की' ॥

रेगिस्तान (desert) में ऊँठ जैसे बड़े-बड़े मुर्गे होते हैं— जिन्हें 'शुतुर-मुर्ग' (ostrich) कहा जाता है। जब इसको कोई खतरा दिखाई देता है, तब यह अपना सिर रेत में छुपा कर समझता है कि वह खतरे से बच गया है !! परन्तु शीघ्र ही मारा जाता है।

ठीक इसी प्रकार, हम इस गुप्त मानसिक अग्नि में दिन रात जलते-सड़ते हुए भी, कई प्रकार के मनोरंजन तथा विलास में खचित हो कर अपने मन को झूठी तसल्ली देते हुए, इस मानसिक अग्नि को भूलने या टालने की कोशिश करते हैं।

यह बहुत अनोखी बात है कि हम में से कोई भी, यह बात मानने या स्वीकार करने को तैयार नहीं, कि हमारे अंदर यह 'गुप्त मानसिक अग्नि' का 'तत् प्रविष्ट है!! यद्यपि हम दिन-रात इसी 'मिथन-मोह-अग्नि-शोक-सागर' में गलतान होकर जल-सड़ रहे हैं!!

हमारे मन के मुख्यतः दो भिन्न-भिन्न 'रुख' या 'जीवन आशय' हैं — जो आपस में विरोधी तथा एक-दूसरे के उल्ट हैं।

लिव धातु दुइ राह है हुकमी कार कमाइ ॥ (पृ. 87)

1. बाहरमुख वृत्तियों (Exoteric life) में गलतान होकर —

प्रभु को 'भूलना'
'हुकुम' से अनभिज्ञ
कूड़ चतुराई
मैं-मेरी का व्यवहार
मोह-माया
भ्रम-भुलाव
ईश्वरीय बरिच्छाओं से वंचित
द्वैत-भाव
आतिश दुनिया
'गुप्त डाह'
'अग्नि कुण्ड'
'अग्नि-शोक-सागर'

में विचरण करना तथा दुख भोगना है।

2. अन्तर-मुख (Esoteric life) होकर —

वृत्तियाँ एकाम्र करके
गुरबाणी के प्रकाश में
आत्म परायण होना
शब्द की 'टेक' लेनी
शब्द में सुरति लगाकर
नाम सिमरन करना
शब्द में लिवलीन होना
चरण-शरण जाना

तथा शब्द के प्रकाश में —

शीतलता

आत्म-रंग

रुन-झुन

अनहद-धुन

प्रिम-रस

नाम रस

प्रेम-प्याला

प्रेम स्वैपना

प्रेम हिंडोले

नाम-रकुमारी

सदा-रवैर

सदा-सुख

सदा-मंगल

सदा-सवेरा

सदा-रकुशी

सदैव आनंद

अनुभव करना है।

गुरबाणी के उपदेश —

रोगु दारू दोवै बुझै ता वैदु सुजाणु ॥

(पृ. 148)

अनुसार —

‘कल ताती’

तथा

‘ठांढा हरि नाउ’

दोनों को —

समझने
पहचानने
बूझने

तथा निर्णय करने के लिए गुरबाणी यूँ मार्गदर्शन करती है —

दुरमति अगनि जगत परजारै ॥
सो उबरै गुर सबदु बीचारै ॥ (पृ. 225)

तपति बुझी गुर सबदी माइ ॥
बिनसि गइओ ताप सभ सहसा
गुरु सीतलु मिलिओ सहजि सुभाइ ॥ (पृ. 373)

गुर सबदी हरि मनि वसै हरि सहजे जाता ॥
अंदरहु त्रिसना अगनि बुझी हरि अंम्रित सरि नाता ॥
(पृ. 510)

इहु जगु जलता नदरी आइआ गुर कै सबदि सुभाइ ॥
सबदि रते से सीतल भए नानक सचु कमाइ ॥
(पृ. 643)

माइआ अगनि जलै संसारे ॥
गुरमुखि निवारै सबदि वीचारे ॥
अंतरि सांति सदा सुखु पाइआ गुरमती नामु लीजै हे ॥
(पृ. 1049)

अगिआनु त्रिसना इसु तनहि जलाए ॥
तिस दी बूझै जि गुर सबदु कमाए ॥
तनु मनु सीतलु क्रोध निवारे हउमै मारि समाइआ ॥
(पृ. 1067&8)

अंतरि अगनि सबल अति बिखिआ हिव सीतलु सबदु गुर दीजै ॥
तनि मनि सांति होइ अधिकाई रोगु काटै सूखि सवीजै ॥
(पृ. 1325&26)

‘शब्द’ तथा ‘नाम’ आत्म प्रकाश के दो पक्ष हैं ।

‘शब्द’ तथा ‘नाम’ दोनों ही मात्र एक आत्म-प्रकाश के प्रतीक तथा प्रकटाव हैं।

इसी लिए गुरबाणी में ‘गुप्त मानसिक अग्नि’ को ‘ठांडा हरि नाउ’ से बुझाने की प्रेरणा की गयी है —

मन मेरे गहु हरि नाम का ओला ॥
तुझै न लागै ताता झोला ॥ (पृ. 179)

जह महा भइआन तपति बहु घांम ॥
तह हरि के नाम की तुम ऊपरि छाम ॥ (पृ. 264)

कलि ताती ठांडा हरि नाउ ॥
सिमरि सिमरि सदा सुख पाउ ॥ (पृ. 288)

चंदन चंदु न सरद रुति मूलि न मिटई घाम ॥
सीतलु थीवै नानका जपंदड़ो हरि नामु ॥ (पृ. 706)

तपत कड़ाहा बुझि गइआ गुरि सीतल नामु दीओ ॥
(पृ. 1002)

मेरे मन नामु नित नित लेह ॥
जलत नाही अगनि सागर सूखु मनि तनि देह ॥ (पृ. 1006)

हरि के नाम की मन रुचै ॥
कोटि सांति अनंद पूरन जलत छाती बुझै ॥ (पृ. 1122)

बिनु नावै सूका संसारु ॥
अगनि त्रिसना जलै वारो वार ॥ (पृ. 1173)

आतस दुनीआ खुनक नामु खुदाइआ ॥ (पृ. 1291)

(क्रमशः).

